भारत में हाल की खाद्य मुद्रास्फीति इतनी अधिक क्यों बनी हुई है?*

दीपक मोहंती

मेरे लिए यह सम्मान की बात है कि मुझे इस वर्ष के वार्षिक ललित दोषी मेमोरियल व्याख्यान देने का अवसर दिया गया है। मैं इसके लिए कालेज के प्रधानाचार्य डॉ. फा. फ्रेज़र मासकरेनहास, डॉ अदिति सावंत और सुश्री निकिता कोहली के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ। सेंट जेवियर्स कालेज ने अनेक नेता और बुद्धजीवी व्यक्ति दिए हैं और ललित दोषी उनमें से एक हैं। वे एक सिद्ध आर्थिक प्रशासक और विचारक थे। उन्होंने हमारे देश और विशेष रूप से महाराष्ट्र को औद्योगिक विकास के लिए अनेक नीतिगत योगदान दिए हैं।

अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों को मुझे यह नहीं बताना है कि केंद्रीय बैंक का मुख्य उद्देश्य मूल्य स्थिरता है। केंद्रीय बैंक कम और स्थिर मुद्रास्फीति प्राप्त करने के लिए जूझते रहते हैं ताकि वृद्धि का अधिक स्तर बनाये रखा जा सके और जिससे कि अधिक से अधिक समाज को लाभ हो सके। 2008 के वित्तीय संकट के पूर्व हमने पिछले दशक में अधिक वृद्धि और कम मुद्रास्फीति देखी है। वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ हमारी सबंद्धता होने के कारण संकट ने भारतीय अर्थव्यवस्था को बहुत अधिक प्रभावित किया। सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक ने हमारी अर्थव्यवस्था पर वैश्विक संकट के पड़ने वाले प्रभाव को कम करने के लिए अनेक नीतिगत उपाय किए हैं। इस प्रक्रिया में वृद्धि के स्तर में सुधार हुआ किंतु मुद्रास्फीति भी बढ़ी है। हाल ही में, जहां वृद्धि में गिरावट देखी गई, वहीं मुद्रास्फीति अपने सुखद स्तर से अभी भी अधिक बनी हुई है। 2008-09 से संकट के बाद की अवधि के दौरान मुद्रास्फीति प्रमुख सार्वजनिक नीतिगत चिंता के रूप में उभर कर आई है। मुद्रास्फीति के वर्तमान अध्याय की तकलीफदेह विशेषता यह है कि इसकी वजह से खाद्य मुद्रास्फीति भी अधिक बनी हुई है जो हमारे समाज के गरीब और कम आय वर्ग वाले लोगों को सबसे अधिक नुकसान पहुंचाती है।

इस परिस्थिति के संबंध में, मैं आपके समक्ष खाद्य मुद्रास्फीति पर चर्चा प्रस्तुत करता हूँ। इस चर्चा में मैंने तीन वर्षों की खाद्य मुद्रास्फीति, मांग और आपूर्ति पक्ष दोनों से खाद्य मुद्रास्फीति के निर्धारकों का विश्लेषण, मौद्रिक नीति की भूमिका को शामिल किया है। इसके साथ-साथ मैं खाद्य मुद्रास्फीति के समाधान के लिए आगे किए जाने वाले उपायों पर भी चर्चा करूंगा।

वर्षों के दौरान हमने देखा है कि हमारे सकल देशी उत्पाद में कृषि और कृषि से संबद्ध क्षेत्रों का हिस्सा, जो सामान्यतः खाद्य उत्पादन क्षेत्र को दर्शाता है, 1990 के मध्य के 25 प्रतिशत से काफी कम होकर अभी लगभग 14 प्रतिशत रह गया है। तथापि, मौजूदा स्थिति में खाद्य थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) का एक-तिहाई से अधिक और हमारे उपभोक्ता मूल्य सूचकांक का एक-आधा हिस्सा खाद्य का होता है। चूंकि खाद्य अर्थव्यवस्था निश्चित रूप से देशी उत्पादन पर निर्भर करती है, अतः कृषि उत्पादन में हुए उतार-चढ़ाव का प्रभाव सीधे उत्पादन और मुद्रास्फीति पर पड़ता है। तथापि, यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि कृषि उत्पादन में आई गिरावट का प्रतिकूल प्रभाव मुद्रास्फीति की तुलना में जीडीपी पर काफी कम पड़ता है क्योंकि अभी भी हमारे मूल्य सूचकांक में खाद्य का भार अधिक है।

जैसा कि आपको ज्ञात है कि कृषि उत्पादन में मौसम की बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। हमने सालों से देखा है कि मौसमी वर्षा की मात्रा और स्थानिक वितरण कृषि उत्पादन पर काफी प्रभाव डालते हैं और इनका प्रभाव मुद्रास्फीति पर भी पड़ता है (चार्ट 1)।

चार्ट 1: सामान्यतः कम वर्षा होने से खाद्य कीमतें बढ़ जाती हैं

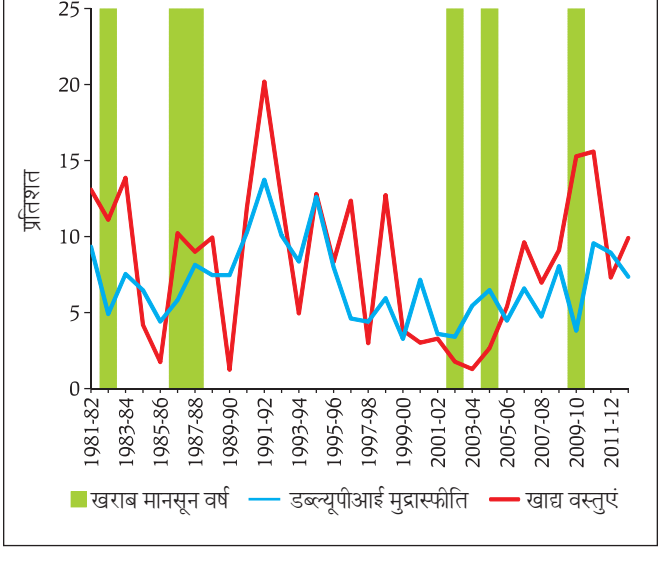

* 13 जनवरी 2013 को सेंट जेवियर्स कालेज, मुबंई में वार्षिक ललित दोषी मेमोरियल व्याख्यान, जेवियर्स अध्याय पर भारतीय रिज़र्व बैंक के कार्यपालक निदेशक श्री दीपक मोहंती द्वारा दिया गया व्याख्यान। इस व्याख्यान को तैयार करने में डॉ अभिमान दास और श्री जोयस जॉन द्वारा दिए गए सहयोग के लिए उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की जाती है।

चार्ट 2: 2007-08 से खाद्य सूचकांक में संरचनागत उर्ध्वगामी परिवर्तन

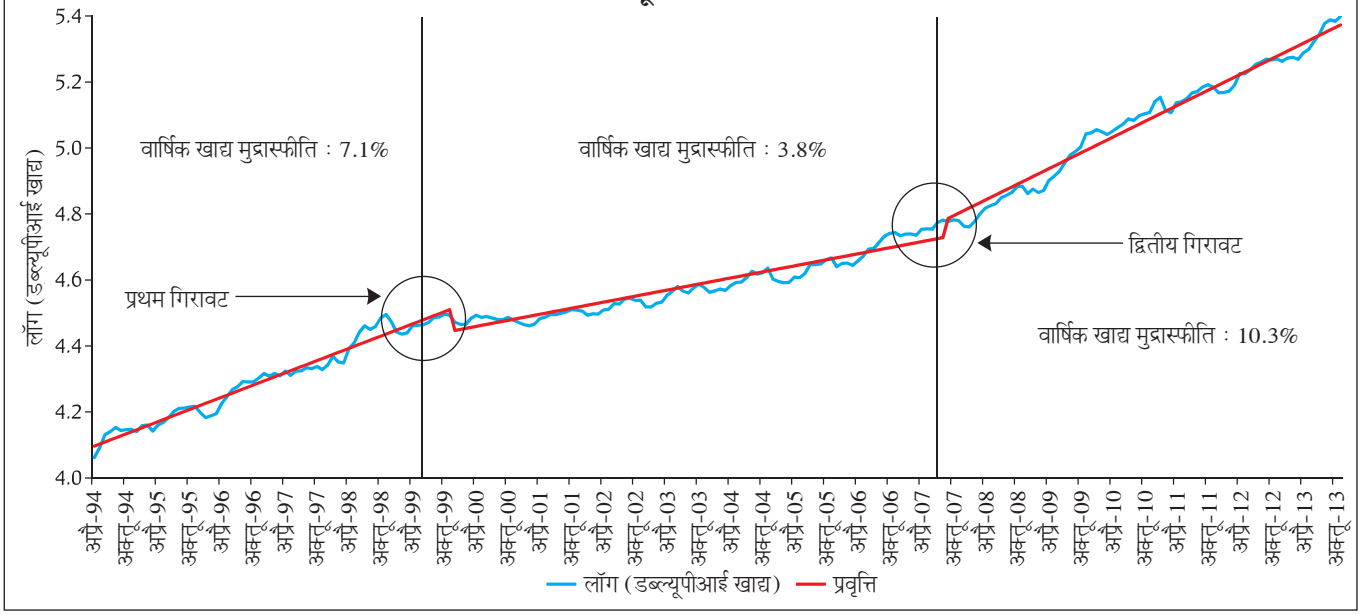

किंतु क्या कम मानसून खाद्य मुद्रास्फीति में हाल की प्रवृत्ति को पूरी तरह से स्पष्ट कर सकती है? मैं इस मुद्दे पर थोड़ा अधिक विस्तार से चर्चा करना चाहता हूँ।

जब हम दीर्घावधि के लिए खाद्य मूल्य सूचकांक का मूल्यांकन करते हैं तो पाते हैं कि हमें दो संरचनागत बाधाओं का सामना करना पड़ा है - एक , वित्तीय वर्ष 2000-01 के प्रारंभ में और दूसरी, 2007-08 के मध्य की अवधि के दौरान (चार्ट 2)[1]।

यह जानकारी बहुत ही रोचक है कि औसत खाद्य मुद्रास्फीति 1990 की दूसरी छमाही के वार्षिक 7.1 प्रतिशत से घटकर 2000-08 तक की आठ वर्ष की अवधि के दौरान वार्षिक 3.8 प्रतिशत रह गई जबकि जीडीपी वृद्धि पिछली अवधि के 6.7 प्रतिशत से बढ़कर 7.2 प्रतिशत हो गई थी। 2000-08 तक की आठ वर्ष की अवधि के दौरान दो बार 2002-03 और 2004-05 में कम मानसून देखा गया, इसके बावजूद, खाद्य मुद्रास्फीति कम हुई जिससे ऐसा लगता है कि खाद्य मुद्रास्फीति पर मानसून का प्रभाव कम पड़ा है। आगे 2008-09 से 2013-14 तक की पांच वर्ष की अवधि के दौरान, न केवल खाद्य मुद्रास्फीति में औसतन प्रति वर्ष 10.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई, बल्कि, यह लगातार अधिक बनी रही है। विवादास्पद रूप से यह माना जाता है कि 2009-10 के दौरान सूखे के कारण अधिक खाद्य मुद्रास्फीति बनी रही। किंतु उसके बाद के वर्षों के दौरान हुई अच्छी बारिश होने से भी खाद्य मुद्रास्फीति कम नहीं हुई। वैश्विक खाद्य कीमतों में भी बढ़ोतरी हुई और हमारी विनिमय दर कम हुई जैसे अनेक ऐसे स्पष्टीकरण मौजूद हैं जिसके चलते देशी खाद्य मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी हुई। किंतु उसके बाद वैश्विक खाद्य कीमतों में हुई गिरावट से हमारी खाद्य मुद्रास्फीति कम नहीं हुई। वास्तव में, खाद्य मुद्रास्फीति अपने उच्चतम स्तर पर पहुंच गई, यह लगातार दोहरे अंक में होने के कारण हमारे लिए जरूरी हो गया है कि हम इसके लिए बुनियादी स्तर पर उपाय करें। अलग-अलग स्तर की खाद्य मुद्रास्फीति से संबंधित आंकड़ों पर एक नज़र डालते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हाल ही में, खाद्य मुद्रास्फीति के घटकों कुछ बदलाव हुआ है। यद्यपि, आनाज संबंधी मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी हुई है, फिर भी, ये अधिकांशतः प्रोटीन और फल तथा सब्जियां हैं जिन्होंने थोक बिक्री के स्तर पर कुल खाद्य मुद्रास्फीति को प्रेरित किया है (चार्ट 3)।

फुटकर स्तर पर, खाद्य मुद्रास्फीति भी अधिक बनी रही। यद्यपि, थोक बिक्री के स्तर और उपभोक्ता स्तर पर खाद्य मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति एक समान रही, सुधार के दौरान उपभोक्ता खाद्य मुद्रास्फीति में काफी तेजी से बढ़ोतरी हुई जो कि डब्ल्यूपीआई और सीपीआई के बीच के अंतर को स्पष्ट करती है (चार्ट 4)। खाद्य मुद्रास्फीति के प्रेरकों में हाल ही में हुए परिवर्तन से आंशिक रूप से अंतर स्पष्ट हो सका; फल और सब्जियों जैसी खराब होनी वाली वस्तुओं के संबंध में फुटकर मार्जिन अधिक रही है।

[1] अनुमान प्रवृत्ति बाई-पिरॉन पद्धति पर आधारित है जिसमें अप्रैल 1994 से नवंबर 2013 तक की अवधि के मासिक डब्ल्यूपीआई से संबंधित आंकड़े शामिल हैं।

चार्ट 3: खाद्य मुद्रास्फीति के प्रमुख योगदानकर्ता

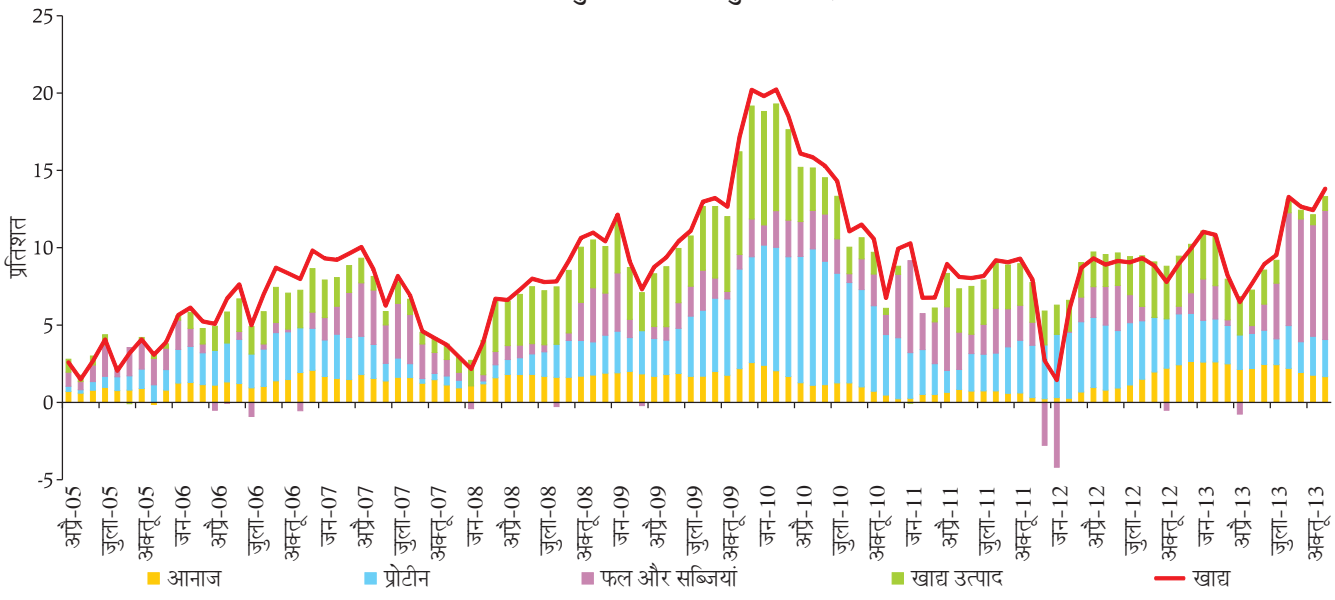

हाउसहोल्ड खपत व्यय के संबंध में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय द्वारा किए गए सर्वेक्षण से पता चलता है कि हाल के वर्षों में खाद्य व्यय के घटकों में परिवर्तन हुआ है। जैसे ही आय के स्तर में बढ़ोतरी होती है, यह आशा करना स्वाभाविक है कि खाद्य पर व्यय की गई आय के हिस्से में कमी आती है। कम हुए हिस्से के अंतर्गत भी सभी आय दशमकों में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में प्रोटीन और सब्जियों पर वास्तविक व्यय में काफी बढ़ोतरी हुई है। 1993-2012 तक के आंकड़ों से पता चलता है कि 2000 की दूसरी छमाही में ही केवल वार्षिक औसत वास्तविक व्यय अनुकूल रहा। किंतु उसके उपरांत, 2010-12 के दौरान वास्तविक औसत प्रति व्यक्ति व्यय काफी अनुकूल बना रहा। इसके अतिरिक्त, प्रोटीन और सब्जियों जैसी खाद्य वस्तुओं की अन्य फार्म से संबंधित आनाजों से व्यय का आबंटन अधिक रहा (सारणी)। अतः प्रोटीन और सब्जियों के मूल्य संबंधी प्रेरकों में एक प्रेरक मांग है।

चार्ट 4: खाद्य मुद्रास्फीति थोक बिक्री और उपभोक्ता मूल्य बास्केट

(3 माह के अंतराल औसत पर वर्ष-दर-वर्ष - प्रतिशत)

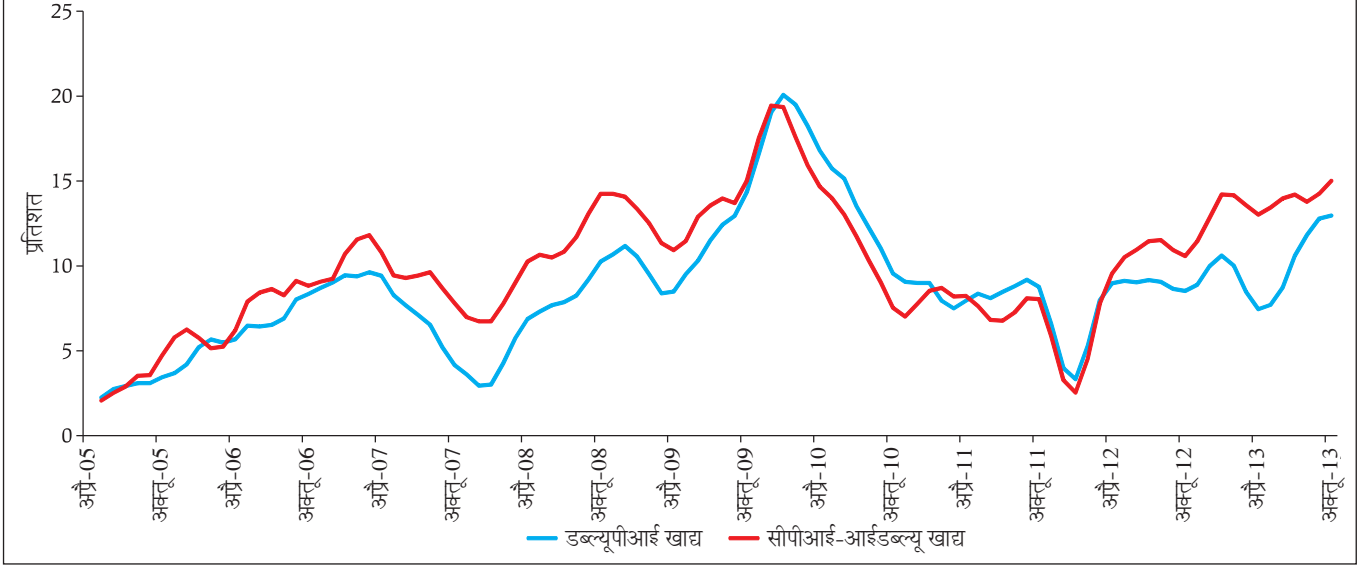

सारणी : वास्तविक@ हाउसहोल्ड मासिक प्रति व्यक्ति व्यय में औसत वार्षिक वृद्धि

समूह/उप समूह	1993-2000		2000-05		2005-10		2010-12	
	ग्रा	श	ग्रा	श	ग्रा	श	ग्रा	श
आनाज	-0.6	0.0	-2.6	-2.4	-1.7	-0.8	-4.2	-3.6
प्रोटीन#	0.1	0.4	0.2	-1.1	2.4	1.8	9.2	5.6
फल और सब्जियां	1.3	0.8	1.7	-0.8	0.6	0.3	2.2	1.5
खाद्य उत्पाद*	-0.5	-0.9	2.6	0.9	1.3	-0.1	8.5	9.6
खाद्य	-0.1	0.0	0.0	-0.8	0.6	0.4	4.2	4.2

ग्रा: ग्रामीण ; श: शहरी
@ ग्रामीण सीपीआई-एएल (खाद्य) 1993-94 =100 के आधार पर कम किया गया है और शहरी सीपीआई-आईडब्ल्यू (खाद्य) 1993-94=100 के आधार पर कम किया गया है।
# दालें, दूध, अण्डा, मांस और मछली
* खाने वाला तेल, पेय पदार्थ, चीनी, नमक और मसाले

एक अन्य कारक कृषि की लागत है। अनेक घटकों की कीमतें बढ़ गई हैं। विनिमय दर में मूल्यह्रास और तेल की अंतरराष्ट्रीय कीमतों में बढ़ोतरी होने के कारण ईंधन और उवर्रक की लागत बढ़ गई है। कृषि की लागत का सबसे प्रमुख भाग श्रम है। ऐसी ही कुछ स्थिति छोटी धारिता वाली इकाईयों की है जो कि मशीनीकरण के प्रति कम जिम्मेदार है, सन 2000 के मध्यावधि से कृषि संबधी मजदूरी में लगातार वृद्धि देखी गई है। मुद्रास्फीति के बाद भी, वास्तविक मजदूरी काफी अनुकूल रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में गैर-कृषि संबंधी मजदूरी में भी समान वृद्धि देखी गई है।

ग्रामीण मजदूरी बढ़ने के पीछे अनेक कारण हैं। एक कारण यह है कि महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम (एमजीएनआरईजीए) जैसी सामाजिक संयुक्त सार्वजनिक नीति के जरिए ग्रामीण मजदूरी की न्यूनतम सीमा को निर्धारित करना और श्रम-बल के मोल-भाव क्षमता को बढ़ाना है। इस पर बहस नहीं करना चाहिए कि ग्रामीण मजदूरी में वृद्धि अपेक्षित नहीं है क्योंकि वास्तविक मजदूरी कुछ समय से स्थिर बनी हुई है। सच में, जब जीडीपी में तेजी से वृद्धि हो रही थी, तब भी वास्तविक मजदूरी की वृद्धि कुछ हद तक अनुकूल थी, किंतु जीडीपी वृद्धि की गति कम होने पर भी वास्तविक मजदूरी की वृद्धि काफी अधिक बनी रही। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि जिस अवधि के दौरान मजदूरी बढ़ी है उस अवधि के दौरान आर्थिक वृद्धि चक्र में बढ़ोतरी हुई है (चार्ट 5)।

अर्थशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते आप भलीभांत जानते हैं कि मजदूरी में हुई वृद्धि यदि उत्पादन वृद्धि के अनुकूल नहीं है तो यह स्फीतिकारी हो सकती है। हमारी खाद्य अर्थव्यवस्था में लागत-

चार्ट 5: इनपुट लागत और खाद्य मुद्रास्फीति (प्रतिशत)

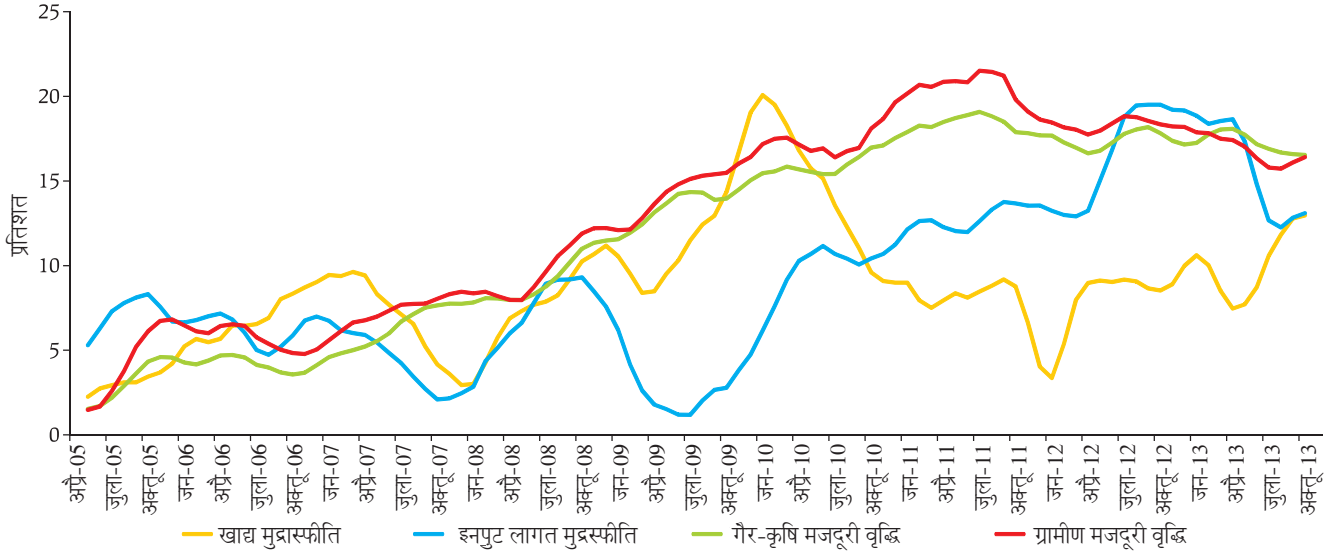

स्रोत: सीरीज 3 तीन महीने औसत अंतराल पर तैयार की गई है। इनपुट लागत में बिजली, उवर्रक एवं कीटनाशक, डीजल और कृषि मजदूरी शामिल हैं।

आघात देखे गए, जिसे मजदूरी में हुई लगातार बढ़ोतरी का साथ मिला जिससे मांग बढ़ गई। आपूर्ति में समान वृद्धि नहीं हुई, किंतु कीमतों में अपेक्षित स्तर से अधिक वृद्धि हुई। जहां, अस्वाभाविक तथ्य उपर्युक्त अनुमान की ओर संकेत कर सकते हैं, वहीं अर्थशास्त्री के रूप में आप इसकी भिन्न प्रकार से जांच कर सकते हैं। मैंने बहिर्जात नियंत्रण चर के रूप में वर्षा सहित खाद्य मूल्य, सामग्री इनपुट मूल्य और ग्रामीण मजदूरी के तीन चरों की एक साधारण स्ट्रक्चरल वेक्टर आटो रिग्रेशन (एसवीएआर) विधि को अपनाया[2]। इससे प्राप्त परिणामों से पता चलता है कि खाद्य मुद्रास्फीति पर सबसे अधिक अनुकूल प्रभाव सामग्री इनपुट लागत का पड़ा है। उसी प्रकार, मजदूरी का काफी अनुकूल प्रभाव पड़ा है। तथापि मजदूरी का प्रभाव नियमित है, किंतु सामग्री लागत की तुलना में अधिक स्थाई है। अब मैं मौद्रिक नीति की भूमिका पर चर्चा करना चाहता हूँ।

मौद्रिक नीति को खाद्य मुद्रस्फीति के प्रति कैसा बर्ताव करना चाहिए? हमने किताबों में पढ़ा है कि मौद्रिक नीति को खाद्य मूल्य में वृद्धि जैसे आपूर्ति आघातों के जरिए ध्यान देना चाहिए, किंतु अनुभव के आधार पर हम सकते हैं कि यदि आपूर्ति-आघात स्थायी बने रहे और संरचनागत हों तो इसका समाधान न कर पाना नीति के लिए एक गलती होगी। उदाहरण के लिए, अनेक केंद्रीय बैंकों ने इसे अस्थायी आपूर्ति आघात मानते हुए 1970 के तेल मूल्य आघातों के अनुकूल बनाया दिया है। बाद में विश्वव्यापी मुद्रास्फीति का यही प्रमुख कारक बन गया। तथापि, वास्तविक नीतिगत निर्णय उतना सहज और सरल नहीं हो सकते हैं जिनता कि हैं।

अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति प्रत्याशा की स्थिति के जरिए इस प्रक्रिया में जटिलता का एक अन्य स्तर जोड़ा गया है। यदि मुद्रास्फीति प्रत्याशाएं कम और नियंत्रित हैं तो किसी आपूर्ति-आघात के स्फीतिकारी प्रभाव से बाहर निकला जा सकता है; यही कारण है कि आम तौर पर मजदूरी इस प्रकार की मुद्रास्फीति के प्रति रिऐक्ट नहीं करती है। तथापि, यदि मुद्रास्फीति प्रत्याशाएं अधिक हो और नियंत्रित न हो, भले ही अस्थायी आपूर्ति-आघात हो, तो भी ये प्रत्याशाओं पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं और इसका परिणाम मध्यावधि मुद्रास्फीति हो सकती है।

इसे हाल ही में हमने देखा है। जैसे ही 2009 में वैश्विक अर्थव्यवस्था में मंदी से सुधर हुआ है, वैसे ही वस्तुओं की कीमतों, विशेष रूप से खाद्य और तेल की कीमतों में सुधार हुआ जिससे अनेक देशों में हेडलाइन मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी हुई। तथापि, अनेक उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की हेडलाइन मुद्रस्फीति में गिरावट आई, क्योंकि काफी प्रतिकूल उत्पादन अंतराल के अतिरिक्त मुद्रास्फीति प्रत्याशाएं नियंत्रित बनी रहीं। वास्तव में, हमारे जैसे विकासशील देश में मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं की माप और व्याख्या करना कठिन है। तथापि, चुनिंदा शहरी क्षेत्रों में किए गए आरबीआई के तिमाही हाउसहोल्ड मुद्रास्फीति प्रत्याशा संबंधी सर्वेक्षण से पता चलता है कि भारत में मुद्रास्फीति प्रत्याशाएं अभी कुछ समय के लिए दोहरे अंक में बनी हुई हैं[3]। नीतिगत विश्लेषण में व्यापक सहमति यह है कि आपूर्ति-आघात के कारण बढ़ी मुद्रास्फीति के पहले दौर के प्रत्यक्ष प्रभावों का अनुमान कोई भी लगा सकता है, इसलिए नीति को दूसरे दौर के प्रभावों का समाधान करना चाहिए ताकि मुद्रास्फीति प्रक्रिया अधिक व्यापक न हो सके.'' ... खाद्य मूल्य दबाव का सामना करने में मौद्रिक नीति की प्रत्यक्ष भूमिका सीमित है, किंतु लगातार अधिक खाद्य मुद्रास्फ्रीति के संबंध में मुद्रास्फीति प्रत्याशाओं को रोकने के लिए मौद्रिक कार्रवाई अभी भी की जानी है[4]।"

अंत में, हाल के वर्षों के दौरान खाद्य मुद्रास्फीति के स्वरूप और संरचना में परिवर्तन हुआ है। जैसे-जैस प्रति व्यक्ति आय बढ़ी है, वैसे-वैसे खाद्य की मांग अर्थात प्रोटीन, फल और सब्जियों की मांग बढ़ी है। चूंकि आपूर्ति की मात्रा पर्याप्त नहीं रही है, इसलिए मूल्य का दबाव अधिक रहा है। इसके अतिक्ति, सामग्री लागत और श्रम दोनों की बढ़ती कीमतों के संबंध में कृषि क्षेत्र लागत-प्रेरित रहा है।

अब मैं अपनी चर्चा समाप्त करते हुए आगे चर्चा के लिए कुछ ऐसे बिंदुओं को आपके समक्ष रखता हूँ ताकि खाद्य अर्थव्यवस्था गैर-स्फीतिकारी वृद्धि जो मध्यावधि से दीर्घावधि के दौरान बनी रह सकती है, के पथ पर बाधा न बने।

पहला, कृषि उपज का भारी मात्रा में बर्बादी, विशेष रूप से फल और सब्जियों के जैसी खराब होने वाली उपज जिन्हें उत्पादन समूहों पर शीत गृह बनाकर और संसाधन सुविधा उपलब्ध करा करके आपूर्ति चेन लाजिस्टिक्स में सुधार के जरिए कम करने की जरुरत है।

[2] अप्रैल 1994 से नवंबर 2013 तक की अवधि के मासिक आंकड़े के आधार पर अनुमानित है। सामग्री लागत में बिजली, उवर्रक एवं कीटनाशक और डीजल की कीमतें शामिल हैं।

[3] हाउसहोल्ड संबंधी मुद्रास्फीति प्रत्याशा सर्वेक्षण के नवीनतम परिणाम कृपया http://www.rbi.org.in/scripts/PublicationsView.aspx?id=15423 पर देखें।

[4] सुब्बाराव, डी., (2011), "खाद्य मुद्रास्फीति की चुनौतियां", इण्डियन सोसाइटी ऑफ एग्रीकल्चरल मार्केटिंग, हैदराबाद के वार्षिक सम्मेलन में दिया गया अध्यक्षीय भाषण, नवबंर 22

दूसरा, राज्य सरकारों द्वारा कृषि उपज विपणन समिति अधिनियम में संशोधन करके और बेहतर मूल्य सुपुर्दगी के लिए उत्पादकों और व्यापारियों दोनों को व्यापक ऐक्सेस प्रदान करने के लिए एपीएमसी के प्रावधानों से फल और सब्जियों जैसी खराब होने वाली वस्तुओं को छूट देकर आगे कृषि व्यापार को उदार बनाने की जरूरत है।

तीसरा, उत्पादकता बढ़ा करके अस्फीतिकारी तरह से मध्यावधि में आपूर्ति को सुधारा जा सकता है। अधिक मशीनीकरण के जरिए उत्पादकता बढ़ाना एक महत्त्वपूर्ण साधन है। तथापि, भूमि धारिता का आकार छोटा होने के कारण प्रौद्योगिकी को चुनने में बाधा आती है। इसलिए छोटे भू-धारकों के स्वामित्व अधिकार को सुरक्षित रखते हुए उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए संविदा पर खेत देने और भूमि का पट्टे पर देना की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

चौथा, मांग पक्ष से, नकदी अंतरण के जरिए सामाजिक कल्याण लाभ के वितरण से न केवल खाद्य उत्पादों के लिए मांग न्यायसंगत होगी बल्कि श्रम बाजार में प्रतिकूल प्रभाव को भी रोका जा सकता है जिससे श्रम-आपूर्ति का अधिक आर्थिक उपयोग हो सकेगा।

अंत में, जहां खाद्य आपूर्ति को बढ़ाने के लिए की गई अधिकांश नीतिगत कार्रवाई मौद्रिक नीति का डोमेन नहीं हो सकती है, वहीं इसे सावधानीपूर्वक संतुलित रूप से कार्य करना पड़ता है ताकि त्वरित कार्रवाई आपूर्ति रिस्पांस को बाधित न करे और कमजोर रिस्पांस स्फीतिकारी प्रत्याशाओं को सख्त बना सके।

इस प्रतिष्ठित व्याख्यान जो कि विशिष्ट व्याख्यान है, को देने के लिए मुझे आमंत्रित करने और मुझे सुनने के लिए एक बार पुनः आप सबको धन्यवाद।